11

वित्त आयोग : संगठन और कार्य

(Finance Commission : Organization & Functions)

भारत एक संघात्मक प्रणाली वाला देश है। किसी भी संघीय शासन के लिए उसके अनिवार्य लक्षणों में एक यह भी है कि उसमें केन्द्र और उसकी विभिन्न इकाइयों के मध्य अधिकारों और कर्तव्यों का स्पष्ट विभाजन होना चाहिए। संघीय शासन व्यवस्था का यह लक्षण भारतवर्ष में भी पाया जाता है। भारत के संविधान द्वारा केन्द्र और उसकी इकाइयों अर्थात् राज्यों के कार्य क्षेत्र की स्पष्ट और विस्तृत व्यवस्था की गई है।

भारत के संविधान की 7वीं अनुसूची में केन्द्र और राज्यों के विधायी अधिकारों का तीन सूचियों के माध्यम से विभाजन किया गया है। शक्तियों के विभाजन की यह योजना भारत सरकार अधिनियम 1935 के प्रावधानों से प्रभावित प्रतीत होती है। इस अधिनियम में भी विधायी शक्तियों का केन्द्र और राज्यों के बीच बंटवारा तीन सूचियों के माध्यम से किया गया था। विधायी शक्तियों का यह विभाजन अग्रांकित सूचियों के माध्यम से किया गया है। संघीय सूची में आरम्भ में 97 विषय रखे गये थे। कुछ परिवर्तनों के पश्चात् अब इस सूची में 99 विषय हो गये हैं।[1] इस सूची में रक्षा, वैदेशिक मामलों, बैंकिंग, मुद्रा और केन्द्रीय कर इत्यादि ऐसे विषय सम्मिलित हैं जो राष्ट्रीय महत्व के हैं इन पर विधि निर्माण की अनन्य शक्ति संघीय सरकार को प्राप्त है। दूसरी सूची राज्य सूची है जिसमें आरम्भ में 66 विषय रखे गये थे और अब 62 विषय रह गये हैं।[2] सार्वजनिक व्यवस्था एवं पुलिस, स्थानीय शासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य और सफाई, कृषि, वन, शिक्षा और राज्य में लगने वाले कर आदि ऐसे विषय इस सूची में संलग्न हैं जिनका प्रत्येक राज्य के लिए महत्व है। इन पर विधि निर्माण की शक्ति राज्यों के विधान मण्डल को प्राप्त है। तृतीय सूची को समवर्ती सूची कहा गया है जिसमें आरम्भ में 47 विषय रखे गये थे जो अब 52 हो गये हैं।[3] इस सूची में फौजदारी कानून और प्रक्रिया, विवाह अनुबन्ध, न्यास, बीमा, श्रमिकों का कल्याण और आर्थिक एवं सामाजिक नियोजन आदि ऐसे विषय सम्मिलत हैं जो संघ और राज्य दोनों के लिए समान महत्व के हैं। इस सूची पर विधि निर्माण की शक्ति, संघीय व्यवस्थापिका और राज्यों की व्यवस्थापिका दोनों को है लेकिन संविधान में यह

प्रावधान भी किया गया है कि संघ सरकार और राज्य सरकार द्वारा एक ही विषय पर बनाई गई विधि में कोई मतभेद की स्थिति उत्पन्न हो तो संघीय विधि मान्य समझी जाएगी। इस सम्बन्ध में यह प्रावधान भी है कि यदि राज्य की ऐसी विधि पर राष्ट्रपति की स्वीकृति ले ली गई थी तो राज्य का कानून मान्य समझा जाएगा, किंतु ऐसी स्थिति में भी संघीय संसद को यह अधिकार होगा कि यह राज्य की ऐसी विधि को अपनी नई विधि के माध्यम से प्रभाव शून्य कर सकेगी।[4]

हमारे संविधान में संघ और राज्य सरकारों के मध्य शक्तियों के विभाजन की तीन सूचियों के माध्यम से जो उक्त योजना प्रस्तुत की गई है उनमें परिगणित विषयों के अलावा यदि और कोई विषय परिस्थितियों के प्रभाव से उत्पन्न हो जाए, या जो परिगणना करने से रह गया हो तो ऐसे विषयों के लिए एक अवशिष्ट सूची (Residuary list) बनाई गई है। इस अवशिष्ट सूची पर विधि निर्माण की शक्ति संघीय सरकार को दी गई है।

संविधान में ही अन्य शक्तियों के साथ साथ देश में उपलब्ध वित्तीय साधनों का भी संघीय सरकार और राज्यों की सरकारों के बीच विभाजन किया गया है। यह सर्वविदित है कि कोई भी संगठन वित्त के अभाव में कार्य नहीं कर सकता। दोनों ही स्तरों पर तीन सूचियों के माध्यम से जो शक्तियां और दायित्व सरकार को सौंपे गये हैं उनका निर्वाह पर्याप्त वित्तीय साधनों के अभाव में उचित प्रकार नहीं किया जा सकता। भारत के वर्तमान संविधान में, भारत सरकार अधिनियम 1935 के प्रावधानों को अपनाते हुए संघीय सरकार और राज्य सरकारों के बीच वित्तीय साधनों के आवंटन के पर्याप्त व्यापक प्रावधान किए गये हैं। हमारे संविधान निर्माताओं ने इन प्रावधानों का उल्लेख करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखा है कि संघात्मक व्यवस्था की दोनों इकाइयों के मध्य वित्तीय स्रोतों का बंटवारा इस तरह से किया जाए कि उसमें वितरण की समानता और न्याय–संगतता दिखाई दे।

भारत का संविधान इस बात का स्पष्ट प्रावधान करता है कि शासन के दोनों स्तरों–केन्द्रीय संसद और राज्यों के विधान मण्डलों को कर लगाने से सम्बन्धित शक्तियां पृथक–पृथक दी गई हैं। उदाहरणार्थ राज्यों के विधान–मण्डलों को जहां तक कृषि भूमि पर कर लगाने का अधिकार है[5] वहीं गैर कृषि भूमि पर कर लगाने का अधिकार केन्द्रीय संसद को दिया गया है।[6] इसी प्रकार अवशिष्ट सूची में सामान्यतः कर लगाने का अधिकार संसद में निहित किया गया है।[7]

कर लगाने की इन शक्तियों के बारे में हमारे उच्चतम न्यायालय ने स्थिति को स्पष्ट करते हुए अपने एक निर्णय में कहा है कि, "संघीय सूची में राजस्व के जो स्रोत आवंटित किए गए हैं वे केवल संघीय सरकार के अनन्य उपयोग के लिए नहीं है बल्कि संविधान के प्रावधानों के अन्तर्गत संसद द्वारा बनाई गई विधि के अधीन संघ और राज्यों के मध्य बाँटे जाने हैं। इस प्रकार वे सभी कर जो केन्द्र सरकार द्वारा लगाये जाते हैं, भारत की संचित निधि का ही भाग नहीं बनते बल्कि उनमें से अनेक करों से प्राप्त राशि को राज्यों के बीच वितरित किया जाता है और

इस प्रकार वह राशि राज्यों की संचित निधि का भाग बनती है। यही नहीं उन करों की राशि जो भारत की संचित निधि का भाग बनती है, का भी उपयोग राज्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जा सकता है। संघ सरकार और राज्य सरकारों के बीच उक्त करों की राशि का बंटवारा जिन सिद्धान्तों पर किया जाना है, तथा जिन सिद्धान्तों के आधार पर राज्य सरकारों को अनुदान दिया जाना है, उनका निश्चय एक उच्च शक्ति प्राप्त वित्त आयोग करेगा जिसका निर्धारण हमारे संविधान निर्माताओं ने एक उत्तरदायी संस्था के रूप में किया है। संविधान निर्माताओं ने यह अनुभव किया था कि राज्यों को जो वित्तीय स्रोत उपलब्ध कराये गए हैं, कदाचित् वे उनके लिए पर्याप्त न हों। अतः भारत सरकार को उनकी कल्याणकारी गतिविधियों को वित्तीय रूप से समर्थन देना होगा। संघीय सरकार की आय के स्रोत अनन्य रूप से संघीय गतिविधियों के लिए ही नहीं हैं बल्कि दूसरे शब्दों में संघ और राज्य एक ही आंगिक इकाई का निर्माण करते हैं जिसके अन्तर्गत आय के समस्त साधनों का सम्पूर्ण भारत वर्ष के हित के लिए उपयोग किया जा सके।"[8]

उच्चतम न्यायालय के उक्त निर्णय से वित्त आयोग नामक उच्च अधिकार प्राप्त इस संस्था की आवश्यकता, उपयोगिता और प्रासंगिकता स्वयं स्पष्ट हो जाती है। उच्चतम न्यायालय के इसी निर्णय से यह भी उद्घटित हो रहा है कि राज्य सरकारों को संविधान ने जो वित्तीय स्रोत उपलब्ध कराये हैं उनसे वे अपने सम्पूर्ण कर्त्तव्यों का निर्वहन सफलतापूर्वक नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में यह स्वयंसिद्ध है कि उन्हें अतिरिक्त राजस्व के लिए संघीय सरकार पर निर्भर रहना पड़ेगा। संविधान के विभिन्न प्रावधानों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि संघीय सरकार द्वारा आरोपित करों से प्राप्त राजस्व का कुछ भाग राज्यों में वितरित किया जाना है। यहां प्रश्न यह उपस्थित होता है कि संघीय सरकार अपनी आय के साधनों में से कितना भाग, किन आधारों पर, कितने समय तक, किस प्रकार राज्यों को वितरित करे? क्या सभी राज्यों को समान मात्रा में आर्थिक सहायता दी जाये? क्या इस प्रकार दी जाने वाली सहायता से संघ, राज्य सम्बन्धों में कोई मतभेद उत्पन्न हो सकते हैं? क्या विभिन्न राज्यों के कार्यों और उत्तरदायित्वों में कोई अन्तर नहीं है? इन समस्त तथ्यों का संघ और राज्यों के सम्बन्धों के सन्दर्भ में बदलती हुई परिस्थितियों के आलोक में समय–समय पर मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है। संविधान निर्माताओं ने यह भी अनुभव किया कि एक समय में निश्चित की गई कोई व्यवस्था आने वाले समय के लिए निरन्तर उपयोगी नहीं हो सकती। यही कारण रहा कि भारत की संघीय व्यवस्था को गतिशील और लोचशील बनाये रखने की दृष्टि से तथा ऊपर उठाये गये विभिन्न प्रश्नों के समुचित समाधान की दृष्टि से ऐसे महत्वपूर्ण विषयों पर राष्ट्रपति को उचित सलाह देने के लिए संविधान में एक वित्त आयोग के गठन का प्रावधान किया गया है।

वित्त आयोग का संगठन (Composition of Finance Commission)

ऊपर की पंक्तियों में प्रस्तुत विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि संघीय सरकार द्वारा

राज्यों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता अथवा अनुदान (Grants in Aid) तथा करों से प्राप्त राशि का बंटवारा किन आधारों पर किया जाए जिससे :

1. विभिन्न राज्यों में असंतोष न हो,
2. उनके विकास में असन्तुलन न हो;
3. उन्हें आवश्यकता व परिस्थितियों के अनुसार सहायता मिले और
4. संघ, राज्यों में सौहार्द्र बना रहे।

भारत की संघीय प्रणाली में इन्हीं सब आवश्यकताओं को आश्वस्त करने के लिये भारत के संविधान के अनुच्छेद 280 में यह प्रावधान किया गया है कि "इस संविधान के प्रारम्भ से 2 वर्ष के भीतर और तत्पश्चात् प्रत्येक पंचम वर्ष की समाप्ति पर, अथवा उससे पहले ऐसे समय पर, जिसे राष्ट्रपति आवश्यक समझे, राष्ट्रपति आदेश द्वारा एक वित्त आयोग गठित करेगा जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त एक सभापति और 4 अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा।[9]

संविधान के इसी अनुच्छेद में आगे कहा गया है कि, "संसद विधि द्वारा उन अर्हताओं का, जो आयोग के सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए अपेक्षित होगी और उस रीति का, जिसके अनुसार उनका संवरण किया जाएगा, निर्धारण कर सकेगी।"[10]

संविधान के इस अनुच्छेद की अनुपालना में भारत की संसद द्वारा वित्त आयोग अधिनियम 1951, जिसे 1955 में संशोधित किया गया पारित किया गया है। इस अधिनियम में यह प्रावधान किया गया है कि आयोग का अध्यक्ष वह व्यक्ति नियुक्त किया जायेगा जिसे सार्वजनिक जीवन का अच्छा अनुभव प्राप्त हो। अध्यक्ष के अलावा जो अन्य 4 सदस्य नियुक्त किये जायेंगे उनकी योग्यताएं इस प्रकार निर्धारित की गई है :

(1) कोई ऐसा व्यक्ति जो किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो या न्यायाधीश रह चुका हो अथवा न्यायाधीश नियुक्त किये जाने की योग्यता रखता हो :
(2) ऐसा व्यक्ति जिसे सरकार के वित्त और लेखा का विशिष्ट ज्ञान हो :
(3) ऐसा व्यक्ति जिसे वित्तीय मामलों और प्रशासन का व्यापक अनुभव हो,
(4) ऐसा व्यक्ति जो अर्थशास्त्र का विशेषज्ञ हो।

अधिनियम में यही कहा गया है कि अध्यक्ष के अलावा जो अन्य 4 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाएंगे वे उक्त योग्यताओं को धारण करने वालों में से होंगे। इसी अधिनियम में यह प्रावधान भी किया गया है कि आयोग में सदस्यों को नियुक्त करते समय राष्ट्रपति यह देखे कि जिस व्यक्ति को वे आयोग में सदस्य नियुक्त कर रहे हैं उसके कोई आर्थिक स्वार्थ तो नहीं है जो आयोग में नियुक्त होने पर उसके कर्त्तव्यों या कार्य प्रणाली को प्रभावित करें।

वित आयोग के कार्य (Functions of Finance Commission)

संविधान के उसी अनुच्छेद, जिसके द्वारा वित्त आयोग की सर्जना की गई है, में आयोग के कार्यों अथवा कर्त्तव्यों का विवरण भी दिया गया है।

संविधान में उल्लेख किया गया है कि वित्त आयोग :

(क) संघ तथा राज्यों के बीच करों के शुद्ध आगम को, जो इस अध्याय के अधीन उनमें विभाजित होता है या होवे, वितरण के बारे में, तथा राज्यों के बीच ऐसे आगम के तत्सम्बन्धी अंशों के बंटवारे के बारे में;

(ख) भारत की संचित निधि से राज्यों के राजस्व के सहायक अनुदान देने में पालनीय सिद्धांतों के बारे में;

(ग) सुस्थित वित्त के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपे हुए किसी अन्य विषय के बारे में, राष्ट्रपति को सिफारिश करेगा।[11]

सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि संविधान ने वित्त आयोग को मुख्यतः तीन काम सौंपे हैं :– प्रथम कार्य के अन्तर्गत राष्ट्रपति को उन करों से प्राप्त शुद्ध आय का संघ और राज्यों के बीच वितरण जिनका दोनों में विभाजन होना हो, तथा उस आय का राज्यों में आवंटन सम्बन्धी सुझाव देना। द्वितीय कार्य के अन्तर्गत वित्त आयोग को उन सिद्धांतों को निश्चित करना है जिनके आधार पर भारत की संचित निधि से राज्यों को अनुदान दिया जाना है, तथा तृतीय कार्य के अन्तर्गत वित्त आयोग से ऐसा कार्य करने की अपेक्षा की गई है जो राष्ट्रपति द्वारा उसे सुव्यवस्थित वित्त के हित में सौपा जाए।

डा. बी. पी. त्यागी ने अपनी पुस्तक में वित्त आयोग द्वारा किये जाने वाले कार्यों का विवरण इस प्रकार दिया है।[12]

वित्त आयोग राष्ट्रपति को निम्नांकित मामलों में अभिशंसा करेगा :

1. संघीय सरकार तथा राज्यों के बीच विभाजित होने वाले अनिवार्य करों की कुल राशि के राज्यों को दिये जाने वाले हिस्से का प्रतिशत;
2. केन्द्रीय राजस्व को राज्यों को दिये जाने वाले अन्य वैकल्पिक स्रोतों का प्रतिशत;
3. भारत सरकार की संचित निधि से राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान के वितरण के आधार क्या हों;
4. जनजाति के क्षेत्रों को दिए जाने वाले अनुदान,
5. किसी भी राज्य को दी जाने वाली विशेष सहायता।

इस प्रकार कार्यों के उपर्युक्त विवरण से यह संकेत मिलता है कि वित्त आयोग मूलतः दो ही अनिवार्य कार्यों का सम्पादन करता है। प्रथमतः यह संघीय सरकार और राज्यों के बीच विभाजित होने वाले विभिन्न करों के विभाजन का प्रतिशत निर्धारित करता है और द्वितीयतः वह भारत सरकार की संचित निधि से विभिन्न राज्यों को दिये जाने वाले अनुदान के आधार सुझाता है।

आयोग की कार्यविधि (Finance Commission At Work)

संविधान में ही इस बात की व्यवस्था की गई है कि वित्त आयोग अपनी कार्य प्रक्रिया स्वयं निर्धारित करेगा तथा अपने कृत्यों के पालन में उसे ऐसी शक्तियां प्राप्त होंगी जो संसद विधि द्वारा उसे प्रदान करे।[13]

संविधान के इस निर्देश से स्पष्ट हो जाता है कि वित्त आयोग एक ऐसी उच्च अधिकार प्राप्त संस्था है जिसे अपनी कार्य प्रक्रिया निर्धारित करने की शक्ति संविधान ने स्वयं स्वीकृत की हैं, इस हेतु कोई निश्चित दिशा–निर्देश सरकार जारी नहीं कर सकती। अब तक नियुक्त सभी वित्त आयागों की कार्य प्रक्रिया पर सामान्य दृष्टिपात करने से ऐसा प्रतीत होता है कि सभी आयोगों की कार्य प्रक्रिया में प्रायः एकरूपता पाई जाती है। वित्त आयोग की औपचारिक नियुक्ति से पूर्व ही इसके सदस्य सचिव (Member Secretary) को संघीय वित्त मंत्रालय में विशेष सचिव या ओ. एस. डी. (Officer on Special Duty) के रूप में नियुक्त किया जाता है जिससे वह आयोग के गठन के बारे में प्रारम्भिक कार्य आरम्भ कर दे और आयोग द्वारा वांछित आँकड़ों एवं सूचनाओं का संकलन कर सके। सदस्य सचिव ही विभिन्न केन्द्रीय मंत्रालयों, राज्य सरकारों तथा नियन्त्रक और महालेखा परीक्षक और विभिन्न राज्यों के महालेखापालों को सम्बन्धित सूचनायें उपलब्ध कराने के लिए लिख देता है। केन्द्र सरकार तथा सभी राज्य सरकारों से यह आग्रह किया जाता है कि आयोग द्वारा विचाराधीन उस पांच वर्ष की अवधि, जिसके बारे में आयोग को सिफारिश करनी है, के आय और व्यय सम्बन्धी पूर्वानुमान प्रस्तुत किए जायें। साथ ही विभिन्न केन्द्रीय करों और व्यय सम्बन्धी पूर्वानुमान प्रस्तुत किए जायें। साथ ही विभिन्न केन्द्रीय करों और शुल्कों के अन्तरण (Devolution) के वर्तमान आधार के संदर्भ में उनका दृष्टिकोण और इसमें परिवर्तन सम्बन्धी सुझाव भी आमन्त्रित किये जाते हैं। केन्द्रीय सरकार से आय कर की विभाजन योग्य राशि तथा अन्य केन्द्रीय करों और शुल्कों में राज्यों के सम्भावित हिस्से के बारे में भी विस्तृत विवरण मांगा जाता है। नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक तथा विभिन्न राज्यों के महालेखापालों से राज्यों के केन्द्रीय ऋण सम्बन्धी भुगतान के बारे में भी जानकारी देने का आग्रह किया जाता है।

इस प्रकार संघीय वित्त मन्त्रालय में नियुक्त यह विशेष पदाधिकारी वित्त आयोग की नियुक्ति के पूर्व आवश्यक सूचनाओं का संकलन कर वित्त आयोग के कार्य के लिए आवश्यक आधार भूमि तैयार कर देते हैं। इसके पश्चात वित्त आयोग इन समस्त सूचनाओं के उपलब्ध हो जाने के पश्चात् प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों से विचार–विमर्श करता है। यह विचार–विमर्श औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार का होता है। विचार–विमर्श के लिए के लिए विभिन्न राज्यों से वित्त आयोग के केन्द्रीय कार्यालय तक आने या स्वयं वित्त आयोग के राज्य की राजधानियों तक आने का निर्धारण आयोग स्वयं करता है। आमतौर पर यह देखा गया है कि वित्त आयोग के सभी सदस्य राज्यों से विचार–विमर्श करने तथा उनके दृष्टिकोण से अवगत होने के लिए राज्यों का दौरा करते हैं। अपने इस विचार–विमर्श में वित्त आयोग के सदस्य राज्यों के मुख्यमंत्रियों, वित मन्त्रियों और अन्य मन्त्रियों से वित्तीय साधनों के एकत्रण, वितरण और तत्सम्बन्धी नीतियों के सामान्य सिद्धांतों पर चर्चा करते हैं। इसी विचार–विमर्श में वित्त आयोग के पदाधिकारी राज्य सरकारों के वित्तीय अधिकारियों से वित्तीय स्थिति के बारे में उनके अनुमानों और पूर्वानुमानों पर गहन

चर्चा करते हैं। इन परिचर्चाओं के दौरान जो नीति सम्बन्धी मामले उभर कर आते हैं उन पर पुनः राज्य के मन्त्रिमण्डल के साथ परिचर्चा और मन्त्रणा की जाती है। राज्य का महालेखापाल इन सभी परिचर्चाओं में औपचारिक रूप से उपस्थित रहता है। राज्य सरकारों के साथ होने वाली इन औपचारिक मन्त्रणाओं के अलावा वित्त आयोग सम्बन्धित राज्य के महालेखापाल से भी पृथक से चर्चा आयोजित कर सकता है। वित्त आयोग की पहल पर आगामी पांच वर्षों के लिए वित्तीय सहायता के आधार सुझाने वाली यह वित्तीय परिचर्चा अत्यन्त गम्भीर किस्म की मन्त्रणा मानी जाती है। वित्तीय उलझन के इतने अधिक जटिल प्रश्न इन परिचर्चाओं में प्रकट होते हैं कि उन पर कोई अन्तिम निर्णय करने के पूर्व, केन्द्रीय वित्त मन्त्रालय के अधिकारियों, नियन्त्रक और महालेखा परीक्षक, रिजर्व बैंक के अधिकारियों तथा राज्य के महालेखाकारों से भी सूचनाओं का आदान–प्रदान और विचार–विमर्श किया जाता है।

वित्त आयोग न केवल सरकारी स्तर पर इस तरह की औपचारिक मंत्रणा करता है अपितु एक विज्ञप्ति जारी कर आम नागरिकों और विभिन्न सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों से भी विचाराधीन मामलों के बारे में उनके ज्ञापन अथवा विचार आमन्त्रित करता है। प्रायः यह देखा गया है कि वाणिज्य और उद्योग का सशक्त दबाव समूह "चेम्बर ऑफ कामर्स एण्ड इण्डस्ट्री" संसद सदस्य, विधान सभा सदस्य, विश्वविद्यालय के जागरूक शिक्षक, अर्थशास्त्री तथा राज्य के विकास और उसके अर्थशास्त्र में रूचि रखने वाले विद्वान् आयोग को अपने स्मरण पत्र भेजते हैं, आवश्यक होने पर विचार–विमर्श का समय मांगते हैं। आयोग भी अपने प्रतिवेदन को अन्तिम रूप देते समय समाज के इन विभिन्न वर्गों के जागरूक व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत विचारों को उचित महत्व देता है।

वित्त आयोग : एक परामर्शदात्री संस्था (Finance Commission : An Advisory Body)

यहां यह जान लेना प्रासंगिक है कि संविधान के प्रावधानों के अनुसार वित्त आयोग केवल एक परामर्शदात्री संस्था है और राष्ट्रपति उसकी अभिशंसाओं को मानने के लिए बाध्य नहीं है। संविधान में सिर्फ इतना ही कहा गया है कि राष्ट्रपति इस संविधान के उपबन्धों के अधीन वित्त आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश को, उस पर की गई कार्यवाही के व्याख्यात्मक ज्ञापन के सहित, संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायेगा।[14] इसी तरह संविधान का अनुच्छेद 272 भी यही ध्वनित करता है कि वित्त आयोग की सिफारिशें सरकार के लिए परामर्शदात्री हैं। यहां यह उल्लेखनीय है कि 8 वें वित्त आयोग की अभिशंसाओं को प्रारम्भिक वर्ष में भारत सरकार ने यह तर्क देते हुए कि आयोग का प्रतिवेदन विलम्ब से प्राप्त हुआ है, वित्तीय कठिनाईयों के कारण इनकी सिफारिशों को तत्काल लागू नहीं किया। भारत सरकार के इस निर्णय ने समस्त राज्यो को आर्थिक और वित्तीय कठिनाई में डाल दिया और पश्चिमी बंगाल ने तो इस स्थिति के प्रति तीव्र विरोध प्रकट किया। यहां तक कि उसके उत्तरदायी अधिकारियों ने इस स्थिति के विरुद्ध मुकदमा दायर करने की धमकी भी दे डाली किंतु

बाद में यह धमकी वे क्रियान्वित नहीं कर सके। इसका कारण स्पष्ट है, क्योंकि संविधान का अनुच्छेद 280 (3) केवल यह प्रावधान करता है कि वित्त आयोग अपनी अभिशंसाएं राष्ट्रपति को प्रस्तुत करेगा और अनुच्छेद 281 राष्ट्रपति पर इस कर्तव्य का आरोपण करता है कि इस प्रतिवेदन को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखेंगे। इससे स्पष्ट है कि इन प्रावधानों में यह कहीं प्रकट नहीं होता कि वित्त आयोग द्वारा प्रस्तुत ये अभिशंसाएं भारत सरकार के लिए बाध्यकारक होगी और न की इससे यह आशय ध्वनित होता है कि इन अनुशंसाओं को न माने जाने की स्थिति में राज्यों के कोई विधिक अधिकार उत्पन्न होंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सिफारिशों के न माने जाने या उनके मानने में विलम्ब किये जाने की स्थिति में राज्यों के लिए एक गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो जाएगी; किन्तु इससे राज्य सरकारें संघीय सरकार का विरोध करने के लिए कोई सांविधानिक आधार प्राप्त नहीं करती। इसके विरुद्ध जो संरक्षण उन्हें मिले हुए हैं वह सामयिक चुनाव और मतपेटी ही माने जा सकते हैं। पश्चिमी बंगाल की सरकार ने दिसम्बर, 1984 के चुनावों के भारत सरकार द्वारा 8वें वित्त आयोग की सिफारिशों को मानने में विलम्ब को एक चुनावी मुद्दा बनाया था। पश्चिमी बंगाल सरकार वैधानिक कार्यवाही करने के लिए, प्रयत्नों के बाद भी कोई सांविधानिक आधार नहीं खोज सकी। इस प्रकार वित्त आयोग की सांविधानिक स्थिति यह है कि वित्त आयोग संघीय सरकार द्वारा राज्यों को दिये जाने वाले अनुदान के आधार सुझाता है। साथ ही संविधान में यह प्रावधान है कि राज्यों को विशेष अनुदान देने के लिए संसद विधि द्वारा प्रावधान कर सकती है और जब तक संसद ऐसी विधि बनाये, राष्ट्रपति भी ऐसे विशेष अनुदान को देने के लिए आदेश दे सकता है। यद्यपि न तो अभी तक संसद ने विशेष अनुदान को देने के लिए ऐसी कोई विधि बनाई है और न ही ऐसा आदेश दिया है इसलिए व्यवहार में अब तक नियुक्त समस्त वित्त आयोगों की सिफारिशों को प्रायः सरकार द्वारा अंतिम रूप से अधिकांशतः स्वीकार किया गया है। यह परम्परा बन गई है कि केन्द्रीय सरकार ने वित्त आयोगों द्वारा प्रस्तुत की गई अभिशंसाओं को उसी रूप में स्वीकार कर लिया है जिस रूप में प्रस्तुत की जाती हैं; किन्तु यह सरकार के द्वारा स्थापित परम्परा मात्र है। सांविधानिक स्थिति यह है कि सरकार के समक्ष प्रस्तुत आयोग की सिफारिशें मात्र परामर्शदात्री है; उन्हें मानना या न मानना सरकार की इच्छा पर निर्भर करता है।

अब तक नियुक्त वित्त आयोगों का विवरण (Finance Commissions Appointed So Far)

भारतवर्ष में स्वतन्त्रता के पश्चात् अब तक दस वित्त आयोग नियुक्त किये जा चुके हैं। नीचे प्रस्तुत प्रथम सारिणी में अब तक नियुक्त किए गए वित्त आयोगों का विवरण द्रष्टव्य है :

जून 1987 में भारत सरकार द्वारा नवम् वित्त आयोग की नियुक्ति राज्य सभा के सदस्य और पूर्व केन्द्रीय मन्त्री एन. के. पी. साल्वे की अध्यक्षता में की गई। इसे 1990 से 1995 की अवधि के लिए सिफारिश करने का दायित्व दिया गया। इसी

सारिणी संख्या 1

वित्त आयोग	वर्ष	प्रतिवेदन वर्ष	अध्यक्ष
प्रथम	1951	1953	श्री के. सी. नियोगी
द्वितीय	1956	1957	श्री के. सन्थानम
तृतीय	1960	1962	श्री ए. के. चन्दा
चतुर्थ	1964	1965	डा. पी. वी. राजमन्नार
पंचम	1968	1969	श्री महावीर त्यागी
षष्टम	1972	1973	श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी
सप्तम	1977	1978	न्यायमूर्ति जे. एम. शेलट
अष्टम	1982	1984	श्री वाई. बी. चव्हाण
नवम	1987	1989	श्री एन. के. पी. साल्वे
दसवां	1992	1994	श्री के. सी. पन्त
एकादश	1998	–	श्री ए. एम. खुसरो

तरह सन् 1992 में दसवें वित्त आयोग का गठन किया गया जिसने 1994 में अपनी रिपोर्ट दी है। दसवें वित्तआयोग की सिफारिशें 1995-2000 तक के लिए हैं। ग्यारहवें वित्त आयोग का गठन भी 1998 में ए. एम. खुसरो की अध्यक्षता में कर दिया गया है।

वित्त आयोग द्वारा की जाने वाली सिफारिशों को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(1) आयकर तथा उत्पादन शुल्क व अन्य केन्द्रीय करों के विभाजन और वितरण से सम्बन्धित सिफारिशें;

(2) राज्यों को सहायता अनुदान (Grants-in-aid) देने सम्बन्धी सिफारिशें;

(3) राज्यों को दिए जाने वाले केन्द्रीय ऋण सम्बन्धी सिफारिशें।

विभिन्न वित्त आयोगों द्वारा उपर्युक्त संदर्भों में की गई सिफारिशों को व्यवस्थित रूप से इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

आयकर का केन्द्र और राज्य सरकारों में विभाजन

भारत में संविधान के अनुच्छेद 270 के अनुसार कृषि के अलावा आयकर का आरोपण तथा एकत्रण संघीय सरकार द्वारा किया जाता है किन्तु इससे होने वाली शुद्ध आय का केन्द्र और राज्य सरकारों में विभाजन किया जाता है। आय का यह विभाजन बाध्यकारी है। संघीय सरकार और राज्य सरकारों में इस आय के विभाजन हेतु संविधान ने वित्त आयोग का प्रावधान किया है जिसे यह दायित्व दिया गया है कि केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के मध्य आयकर से होने वाली आय के विभाजन का आधार सुझाये।

आयकर से होने वाली आय के केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों में विभाजन के संबंध में वित्त आयोग ने जो सिफारिशें की है उन्हें सारिणी संख्या 2 में व्यवस्था दी गई है :

सारिणी संख्या 2

आयकर के संबंध में वित्त आयोगों की सिफारिशें

वित्त आयोग	आयकर के सम्बन्ध में राज्यों का हिस्सा (प्रतिशत)	राज्यों को वितरण करने का आधार	
		जनसंख्या	कर संकलन
पहला	55.0	80	20
दूसरा	60.0	90	10
तीसरा	66.0	80	20
चौथा	75.0	80	20
पांचवां	75.0	90	10
छठा	80.0	90	10
सातवां	85.0	90	10
आठवां	85.0	90	10 (पिछड़ेपन के
नवम	85.0	90	10 आधार)
दसवां	77.5	20	80

इस तालिका से यह स्पष्ट होता है कि आयकर से होने वाली आय में से राज्यों को दिए जाने वाले हिस्से की राशि में निरन्तर वृद्धि हुई है। प्रथम वित्त आयोग ने राज्यों को इस आय में से जहां केवल 55 प्रतिशत हिस्सा दिया था वहीं आठवें वित्त आयोग के आते–आते राज्यों का यह हिस्सा 85 प्रतिशत पहुंच गया है। राज्यों को दी जाने वाली इस राशि के वितरण का आधार अधिक से अधिक न्यायसंगत हो, इस दृष्टि से वित्त आयोगों ने इस आय के वितरण हेतु प्रमुख रूप से जनसंख्या को आधार बनाया है। नवम् वित्त आयोग ने राज्यों के पिछड़ेपन को दूर करने तथा उनके विकास में संतुलन स्थापित करने की दृष्टि से यह सिफारिश की है कि आयकर का 90 प्रतिशत हिस्सा उन्हें जनसंख्या के आधार पर दिया जाए।

इसी प्रकार न केवल राज्यों को बल्कि केन्द्र शासित प्रदेशों को भी इस आय का हिस्सा वित्त आयोगों ने निश्चित किया है। यह हिस्सा प्रथम वित्त आयोग ने 2.75 प्रतिशत तथा आठवें वित्त आयोग ने 2.29 प्रतिशत निश्चित किया है। प्रथम से लेकर आठवें वित्त आयोग तक केन्द्र शासित प्रदेशों का यह हिस्सा न्यूनतम 1 प्रतिशत और अधिकतम 2.75 प्रतिशत रहा है। दसवें वित्त आयोग ने आयकर को 20 प्रतिशत

जनसंख्या के आधार पर (1971 की जनसंख्या), 60 प्रतिशत प्रतिव्यक्ति आय के अन्तर के आधार पर, 5 प्रतिशत समायोजित क्षेत्र के आधार पर, 5 प्रतिशत आधारभूत संरचना सूचकांक के आधार पर तथा 10 प्रतिशत कर प्रयासों के आधार पर देना सुझाया था।

उत्पादन शुल्क के संदर्भ में वित्त आयोगों की सिफारिशें

संविधान के प्रावधानों के अन्तर्गत विभिन्न उपभोक्ता वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क को भी केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विभाजन योग्य माना गया है। प्रथम वित्त आयोग ने तम्बाकू, दियासलाई तथा शाक उत्पादनों पर उत्पादन शुल्क से प्राप्त आय को केन्द्र व राज्यों के बीच विभाजन योग्य माना था।

उत्पादन शुल्क के संबंध में सांविधानिक स्थिति यह है कि संविधान के अनुच्छेद 272 ने उत्पादन शुल्क से सम्बन्धित नीति निर्धारण करने का दायित्व संसद पर छोड़ा है जबकि अनुच्छेद 280 ने वित्त आयोग को केन्द्र व राज्य सरकारों के बीच विभाजन योग्य करों के लिए सिफारिश प्रस्तुत करने का निर्देश दिया है। प्रथम वित्त आयोग इसीलिए उत्पादन शुल्क से सम्बन्धित केवल कुछ ही मदों से प्राप्त आय के वितरण हेतु अपनी सिफारिश प्रस्तुत की थीं। प्रथम वित्त आयोग के सदस्यों का यह विचार था कि जो कुछ भी सिफारिश वे इस सम्बन्ध में प्रस्तुत करेंगे वह संविधान के प्रावधानों के अनुसार संसद की विधि के माध्यम से ही क्रियान्वित हो सकेगी। इस तरह जहां प्रथम वित्त आयोग ने केवल तीन वस्तुओं के उत्पादन शुल्क के वितरण की सिफारिश की वहीं द्वितीय वित्त आयोग ने 8 वस्तुओं और तृतीय ने 35 वस्तुओं तथा बाद के वित्त आयोगों ने इससे भी अधिक वस्तुओं से प्राप्त उत्पादन शुल्क को वितरण के लिए अपनी सिफारिशों में शामिल किया है। सारिणी संख्या 3 में इस सम्बन्ध में अब तक वित्त आयोगों द्वारा की गई सिफारिशों की व्यवस्था की गई है।

इस प्रकार आय कर तथा उत्पादन शुल्क दो ऐसे प्रमुख कर हैं जिनके केन्द्र व राज्यों के बीच वितरण हेतु वित्त आयोगों द्वारा प्रमुख रूप से सिफारिश की जाती रही हैं।

करों के इस वितरण के अतिरिक्त राज्यों को सहायता अनुदान देने के लिए भी वित्त आयोगों द्वारा आधार सुझाये हैं। दसवें वित्त आयोग ने वैकल्पिक व्यवस्था को अपनाने का सुझाव देते हुए अनुशंसा की है कि कुल केन्द्रीय कर राजस्व के 26 प्रतिशत और 3 प्रतिशत अतिरिक्त की नई व्यवस्था सहित कुल 29 प्रतिशत राजस्व राज्यों को हस्तांतरित किया जाना चाहिए। इस हेतु संविधान संशोधन की आवश्यकता भी प्रतिपादित की गई है।

राज्यों को सहायता अनुदान (Grants-in-aid to States)

केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के मध्य आय के साधनों का जो बंटवारा किया गया है उससे हमारी राज्य सरकारें केन्द्र सरकार पर आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक निर्भर करती है। देश के कल्याणकारी गतिविधियों और सामाजिक सेवाओं के सम्पादन

का गम्भीर दायित्व राज्य सरकारों पर छोड़ा गया है। इस दृष्टि से राज्य सरकारों को अपनी कल्याणकारी और विकास सम्बन्धी योजनाओं के लिए जिस अतिरिक्त वित्त की आवश्यकता होती है उसके लिए संविधान के अन्तर्गत राज्यों को अनुदान देने के स्पष्ट प्रावधान किए गए हैं। राज्य सरकारों को केन्द्र सरकार द्वारा दिये जाने वाले इस अनुदान को योजनागत अनुदान तथा गैर योजना अनुदान में वर्गीकृत किया गया है। योजना अनुदान का निर्धारण योजना आयोग द्वारा किया जाता है जबकि गैर योजना अनुदान का विनिश्चय वित्त आयोग द्वारा किया जाता है।

सारिणी संख्या 3

उत्पादन शुल्क के सम्बन्ध में वित्त आयोगों की सिफारिशें

आयोग	उत्पादन शुल्क में से जनसंख्या को हिस्सा	वितरण का आधार	
		जनसंख्या	अन्य परिस्थितियों (राज्यों का पिछड़ापन आदि)
	(प्रतिशत)	(प्रतिशत)	(प्रतिशत)
पहला	40.0	40	60
दूसरा	25.0	—	—
तीसरा	20.0	—	—
चौथा	20.0	80	20
पांचवा	20.0	80	20
छठा	20.0	75	25
सातवां	40.0	—	25 (अन्य आधार)
आठवां	45.0	—	—
नवम	45.0	—	—
दसवां	47.5	—	—

अनुदान की इस मद को साधारण शब्दों में केन्द्र के आर्थिक स्रोतों को राज्य सरकारों के लिए स्थानांतरित करने के रूप में समझा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यह भी कहा जा सकता है कि राज्य सरकारों के आय और व्यय के बीच के असंतुलन को दूर करने के लिए केन्द्रीय स्रोतों से मदद को ही अनुदान कहते हैं। इस अनुदान का एक उद्देश्य भारत जैसे संघीय राज्य में विभिन्न राज्यों के बीच विकास के तुलनात्मक असंतुलन को दूर करने के रूप में भी देखा जा सकता है। सारतः यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण देश के संतुलित विकास को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय स्रोतों से राज्य सरकारों को अनुदान दिया जाता है।

यह संकेत पहले ही दिया जा चुका है कि संविधान में केन्द्र और राज्य सरकारों के मध्य आर्थिक साधनों का जो बंटवारा किया गया है उसमें केन्द्र सरकार के आर्थिक संसाधन राज्यों की तुलना में बहुत अधिक रखे गये हैं। ऐसी स्थिति में राज्य सरकारों को उनकी विकास योजनाओं तथा कल्याणकारी कार्यक्रमों के संचालन के लिए केन्द्रीय कोष में अनुदान दिया जाना पूर्णतः व्यावहारिक और उचित प्रतीत होता है।

प्रथम वित्त आयोग ने 1952 से 1957 की अवधि के लिए केन्द्रीय कोष से राज्यों को अनुदान देते समय राज्यों की बजट आवश्यकताओं, उनके कर लगाने के प्रयत्नों, सामाजिक सेवाओं के स्तर, विशिष्ट दायित्व और राष्ट्रीय महत्व के व्यापक उद्देश्यों को मार्ग–दर्शन सिद्धांतों के रूप में ध्यान रखने का सुझाव दिया था। प्रथम वित्त आयोग ने 8 राज्यों को प्राथमिक शिक्षा सुविधाओं के विकास के लिए अनुदान दिए जाने की सिफारिश की थी वहीं 7 अन्य राज्यों को उनकी वित्तीय आवश्यकताओं के अनुरूप सामान्य अनुदान दिये जाने की अनुशंसा की थी। इसी प्रकार दूसरे वित्त आयोग ने इस संदर्भ में यह सिफारिश की थी कि केन्द्रीय कोष से राज्यों को अनुदान देते समय केवल इस तथ्य का ध्यान रखा जाना चाहिए कि केन्द्रीय अनुदान राज्यों को उनके आय–व्यय के असन्तुलन को दूर करने में सहायक होता हो। दूसरे वित्त आयोग ने बम्बई, मद्रास और उत्तरप्रदेश के अलावा 11 राज्यों को 1957 से 1962 की अवधि के लिए 18.75 करोड़ रुपये का अनुदान देने की सिफारिश की थी। आयोग का यह मत था कि बम्बई, मद्रास और उत्तरप्रदेश को केन्द्रीय करों से प्राप्त उनका हिस्सा उनकी आर्थिक आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त होगा इसलिए उन्हें अनुदान की सूची में शामिल नहीं किया गया।

तीसरे वित्त आयोग ने भी इस संदर्भ में पिछले आयोगों की सिफारिशों का अनुमोदन किया। इसने यह सुझाव दिया कि आयोग को वित्तीय आवश्यकताओं का निर्धारण करते समय केवल अनियोजित व्यय को ही नहीं बल्कि नियोजित व्यय को भी ध्यान में रखना चाहिए। इसी प्रकार चौथे वित्त आयोग ने भी पिछले आयोगों की सिफारिशों को अनुमोदन करते हुए सुझाव दिया कि नियोजित अनुदान और विशेष कार्यक्रमों के लिए दिए जाने वाले अनुदान को सहायता अनुदान से पृथक रखा जाना चाहिये। 5वें वित्त आयोग ने भी 10 राज्यों को 5 वर्ष की अवधि के लिये 637.85 करोड़ रुपये का अनुदान देने की अनुशंसा की। इसी प्रकार छठें वित्त आयोग ने 1974 से 79 की की अवधि के लिये राज्यों के गैर योजना मद के घाटे की पूर्ति के लिए कुल 2510 करोड़ रुपये अनुदान के रूप में देने की अभिशंसा की थी। 7वें वित्त आयोग ने राज्यों को दिये जाने वाले अनुदान को दो भागों में बांट दिया। सामान्य अनुदान के रूप में इसने राज्यों के गैर योजना मद के अन्तराल (Gap) की पूर्ति के लिए 8 राज्यों–मणिपुर, त्रिपुरा, मेघालय, नागालैण्ड, सिक्किम, जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उड़ीसा को 1173 करोड़ रुपये सामान्य सहायता अनुदान के रूप में स्वीकृत किया वहीं दूसरी ओर कुछ पिछड़े हुए राज्यों को उनके प्रशासन के स्तर

को ऊंचा उठाने के लिये 437 करोड़ रुपये का पृथक अनुदान देने की व्यवस्था की थी। वित्तआयोग ने यह भी सुझाया कि इन राज्यों को न्यायिक प्रशासन, राजस्व, जिला और जनजाति प्रशासन, पुलिस प्रशासन, जेल प्रशासन, और राजकोष प्रशासन के क्षेत्रों में वर्तमान प्रशासन के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए यह विशेष अनुदान दिया जा रहा है।

8वें वित्त आयोग ने भी गैर योजना मद के राजस्व के अन्तराल को दूर करने के लिये 1985 से 89 की अवधि के लिए घाटे वाले राज्यों को 1553.93 करोड़ रुपये अनुदान देने की संस्तुति की। घाटे की अर्थव्यवस्था के इन राज्यों में असम, हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, मणिपुर, नागालैण्ड, उड़ीसा, सिक्किम, त्रिपुरा और पश्चिमी बंगाल की गणना की गई। 1984 से 86 तक के लिए राजस्थान को भी इसी श्रेणी में माना गया किन्तु 86 के बाद की अवधि के लिए उसे इस श्रेणी में नहीं रखा गया।

8वें वित्त आयोग ने सिफारिशों में राज्यों पर उनके कर्मचारियों को केन्द्र के समान महंगाई भत्ता देने के कारण पड़ने वाले बोझ को भी विचार का विषय बनाया और इस हेतु प्रतिवर्ष अनुदान को 5 प्रतिशत बढ़ाने का सुझाव दिया। 7वें वित्त आयोग की तरह ही प्रशासन के 9 क्षेत्रों–पुलिस, शिक्षा, जेल, जनजाति, स्वास्थ्य, न्याय, जिला और राजस्व, प्रशिक्षण, राजकोष और लेखा प्रशासन के प्रशासनिक स्तर को ऊंचा उठाने के लिए 808.08 करोड़ रुपये अनुदान देने की अभिशंसा की। इसी तरह कुछ विशेष समस्याग्रस्त राज्यों को अपनी विशिष्ट समस्याओं के समाधान के लिए भी अनुदान देने का सुझाव इस आयोग ने दिया था। दसवें वित्त आयोग ने सन् 1995-2000 के लिए 20, 300 करोड़ रुपये के सहायता अनुदान की सिफारिश की है।

केन्द्र तथा राज्य सरकारों को ऋण सहायता

राज्य सरकारें अपनी आवश्यकता के अनुरूप केन्द्रीय सरकार से ऋण प्राप्त कर सकती हैं। इस प्रकार केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों पर पर्याप्त नियन्त्रण रखती है। दूसरे वित्त आयोग को राज्यों को दिए जाने वाले केन्द्रीय ऋण के बारे में सुझाव देने को कहा गया था। आयोग ने इस संबंध में सिफारिश की कि भविष्य में राज्य एक वर्ष में केवल दो बार ही ऋण प्राप्त करने के अधिकारी होंगे। इनमें से एक, दीर्घ अवधि ऋण होगा दूसरा, मध्य अवधि ऋण। चौथे वित्त आयोग ने ऋणग्रस्तता की समस्या के विस्तृत अध्ययन के लिये एक सक्षम निकाय स्थापित करने की सिफारिश की थी। 5वें वित्त आयोग ने यह पुरजोर सिफारिश की कि राज्यों को अपना बजट संतुलित रखना चाहिये और अपने वित्तीय साधनों में ही अपने कार्यों का प्रबन्ध करना चाहिए। आयोग का दृष्टिकोण यह था कि अधिविकर्ष (Over Draft) सैद्धांतिक रूप से असंधार्य (Untenable) तथा व्यावहारिक रूप से अवांछनीय है। आयोग का मत था कि राज्यों को न्यूनतम वित्त प्रबन्धन (Deficit Financing) नहीं अपनाना चाहिए और वित्तीय नीति संतुलित बजट तथा व्यय नियन्त्रण पर आधारित होनी चाहिए। छठें वित्त आयोग ने राज्यों की ऋण स्थिति का विस्तृत अध्ययन किया और 15 से 30 वर्ष के भीतर ऋणों को चुकारा करने की सिफारिश की। आयोग ने पंचवर्षीय

योजनाकाल में 970 करोड़ रुपये की ऋण सहायता (Debt Relief) देने की भी सिफारिश की। 7वें वित्त आयोग ने 5 वर्ष की अवधि के लिए ऋण देनदारी में 21 अरब 50 करोड़ की व्यवस्था की थी। 8वें वित्त आयोग ने भी इस हेतु 481.85 करोड़ रुपये की व्यवस्था की थी। दसवें वित्त आयोग ने राज्यों को दिए गए ऋणों में राहत की सिफारिश की जिसमें राजकोषीय निष्पादन, गंभीर राजकोषीय संकट तथा लोक उद्यमों में उपनिवेश के लिए 5-5 प्रतिशत छूट के लिए प्रावधान है। इस तरह कुल 700 करोड़ रुपये की ऋण राहत दी है।

समीक्षा (Evaluation)

वित्त आयोग के गठन, उसके कार्य और उसके द्वारा प्रस्तुत सिफारिशें देखने से यह स्पष्ट होता है कि यह आयोग एक महत्वपूर्ण सांविधानिक संस्था है जो भारत जैसे संघीय राज्य के वित्तीय साधनों के समन्वित उपयोग की दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य करती है। वित्त आयोग की रचना के प्रावधान यद्यपि संविधान में दिए गए हैं किन्तु व्यावहारिक रूप में आयोग का कार्यक्षेत्र केन्द्र सरकार पर निर्भर करता है। राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाने वाला यह आयोग व्यवहार में केन्द्र सरकार के द्वारा ही नियुक्त किया जाता है और उसके कार्यक्षेत्र का निर्धारण भी केन्द्र सरकार ही करती है। केन्द्र सरकार, यदि चाहे तो, करों के विभाजन के सम्बन्ध में उसकी सीमायें भी निर्धारित कर सकती है।

केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों को जो अनुदान दिया जाता है वह अनुदान पाने के लिए कौन से राज्य पात्र हैं? यह इस बात पर निर्भर करता है कि वित्त आयोग को किन राजस्व मदों पर सिफारिश करने को कहा गया है। उदाहरणार्थ, चौथे, पांचवे और छठें वित्त आयोगों को राज्यों के बजट के केवल अनियोजित राजस्व के सम्बन्ध में ही अनुदान देने की सिफारिश करने को कहा गया था। ऐसी स्थिति में वित्त आयोग जैसी इस सांविधानिक संस्था का कार्यक्षेत्र पर्याप्त सीमा तक केन्द्र सरकार द्वारा उसके गठन के लिए जारी आदेश की भाषा पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त, जैसा कि पूर्व में भी संकेत किया जा चुका है कि वित्त आयोग एक परामर्शदात्री संस्था है जिसकी अभिशंसाओं को मानना या न मानना केन्द्र सरकार की इच्छा पर निर्भर करता है। यद्यपि इस सन्दर्भ में परम्परा रही बनी है कि वित्त आयोग की समस्त सिफारिशों को प्रायः यथारूप स्वीकार कर लिया जाता है फिर भी यह सब कुछ बाध्यकारी न होकर केवल केन्द्र सरकार के स्वविवेक पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, 8वें वित्त आयोग को 1984 से 1989 की अवधि के लिए सिफारिश करने का दायित्व सौंपा गया था किन्तु केन्द्र सरकार ने इसका प्रतिवेदन एक अप्रेल 1985 से कार्यान्वित करने हेतु स्वीकार किया था। इस अवधि के प्रथम एक वर्ष के लिए 7वें वित्त आयोग द्वारा प्रचलित आधारों को ही मान्य समझा गया। पश्चिमी बंगाल की राज्य सरकार ने इस स्थिति का विरोध भी किया किन्तु उसका सार्थक परिणाम नहीं निकल सका। इस प्रसंग में केन्द्र सरकार द्वारा लिया गया यह निर्णय इस बात का प्रत्यक्ष और पर्याप्त प्रमाण है कि वित्त आयोग की सिफारिशों को केन्द्र सरकार अपनी

इच्छा से ही मानती है, इन्हें मानने के लिए उस पर कोई बाध्यकारी सांविधानिक दायित्व नहीं है।

वित्त आयोग की भूमिका को एक अन्य गैर सांविधानिक संस्था ने भी पार्श्व में डाल दिया है। संविधान के निर्माण के समय योजना आयोग जैसी संस्था की कल्पना संविधान निर्माताओं ने नहीं की थी। संविधान के प्रवर्तन के तुरन्त बाद योजना आयोग की स्थापना ने केन्द्र राज्यों के वित्तीय सम्बन्धों में एक नया आयाम उपस्थित कर दिया है। राज्यों की समस्त विकास योजनाओं को योजना आयोग स्वीकृति देता है और इसी के अनुरूप योजना मद पर व्यय की स्वीकृति जारी होती है। इसलिए वर्तमान में वित्त आयोगों का कार्यक्षेत्र गैर योजना मद के राजस्व और व्यय के सन्दर्भ में सिफारिश देने तक सीमित हो गया है। वित्त आयोग केवल केन्द्रीय करों से राज्यों को दिए जाने वाले हिस्से और उनके गैर योजना मद के घाटे की पूर्ति के लिए केन्द्र सरकार से दिये जाने वाले अनुदान के विषय में अभिशंसा करता है। योजना मद के बारे में कोई सिफारिश उसके कार्यक्षेत्र में नहीं आती।

यहां यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि राज्यों के व्यय का अधिकांश भाग योजना मद पर होता है और गैर योजना मद पर तुलनात्मक रूप से खर्चा कम होता है। उदाहरणार्थ, 1972-73 के वित्तवर्ष में कुल 982 करोड़ रुपये के राज्यों के अनुदान में 616 करोड़ रुपया योजना आयोग की सिफारिशों के अनुसार और केवल 366 करोड़ रुपया वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार दिया गया था। इसी प्रकार 1973-74 में 881 करोड़ रुपये में से योजना आयोग की सिफारिश पर 581 करोड़ और वित्त आयोग की सिफारिश पर केवल 300 करोड़ रुपया बांटा गया था।[16] ये आंकड़े इस बात के प्रमाण हैं कि राज्य सरकारों का अधिकांश व्यय अब योजना आयोग की सिफारिशें के अनुसार संचालित होता है जबकि वित्त आयोग की सिफारिशों से संचालित होने वाली गैर योजना मद की राशि तुलनात्मक रूप से अत्यन्त न्यून है। इस प्रकार यह एक ऐसी स्थिति है जिसकी कल्पना संविधान निर्माताओं ने कदापि नहीं की थी। सारतः योजना आयोग की उपस्थिति ने वित्त आयोग की भूमिका को गौण बना दिया है।

इस सन्दर्भ में चतुर्थ वित्त आयोग के अध्यक्ष डॉ. पी. बी. राजमन्नार ने भी यह मत व्यक्त किया था कि योजना आयोग जैसी संस्था का संविधान में कोई प्रावधान नहीं है....उन्होंने यह सुझाव दिया था कि योजना आयोग तथा वित्त आयोग के तुलनात्मक कार्यक्षेत्र और दायित्व को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए। इसी तरह की धारणा पहले, द्वितीय और तृतीय वित्त आयोग के प्रतिवेदनों में व्यक्त की गई थी। छठे वित्तआयोग ने भी विस्तार से इस सन्दर्भ में अपनी राय व्यक्त की थी जिसमें भी योजना आयोग और वित्त आयोग के कार्यक्षेत्र के अतिव्यापन (Over Laping) को दूर करने की सिफारिश की गई थी।

आलोचकों ने प्रति 5 वर्ष बाद नियुक्त किये जाने वाले वित्त आयोग के स्थान पर एक स्थायी वित्त आयोग नियुक्त किए जाने की राय व्यक्त की है। इन लोगों का

यह मत है कि वर्तमान में वित्त आयोग एक बार सिफारिश दे देने के बाद में उसका अनुवर्ती चिन्तन नहीं करता है। ऐसी स्थिति में अनेक बार वित्त आयोग की वास्तविक अभिशंसा और केन्द्र सरकार द्वारा उसे क्रियान्वित करते समय उसकी भावना में अन्तर आ जाने की सम्भावना को एक स्थायी वित्त आयोग के प्रावधान के द्वारा रोका जा सकता है।[17] इस सन्दर्भ में 7वें वित्त आयोग द्वारा यह सुझाव भी दिया गया है कि एक विशेषज्ञ और गैर राजनीतिक संस्था की स्थापना केन्द्र–राज्य के वित्तीय सम्बन्धों के स्वस्थ परिचालन के लिए की जा सकती है। इसी संस्था को वित्त आयोगों की स्वीकृत सिफारिशों के यथारूप क्रियान्वयन का दायित्व भी सौंपा जा सकता है। इस सुझाव पर गम्भीर विचार मंथन की आवश्यकता है।[18]

अब तब नियुक्त वित्त आयोगों ने भारतवर्ष की संघीय व्यवस्था में केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्धों की स्वस्थ परिचालना में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। केन्द्र और राज्यों के मध्य सन्तुलन बनाये रखने में इसका योगदान पूर्णतः सकारात्मक रहा है। प्रो. डी. आर. गाडगिल का कहना है कि हमारे संविधान के वित्तीय प्रावधानों को लागू करने में वित्त आयोग की भूमिका सन्तोषजनक है।[19]

इन सबके बावजूद भारतवर्ष में केन्द्र–राज्य सम्बन्धों के क्षेत्र में सबसे अधिक संवेदना का स्थल केन्द्र राज्यों का आर्थिक पक्ष ही रहा है। केन्द्र में स्वतन्त्रता के बाद से लेकर अब तक, एक छोटे से काल को छोड़कर, कांग्रेस शासनारूढ़ रही है किन्तु विभिन्न राज्यों की गैर कांग्रेसी सरकारें केन्द्र सरकार पर आर्थिक पक्षपात का आरोप लगाती रही है। सरकारिया आयोग इस विषय में व्यापक छानबीन कर रहा है। इस तथ्य पर अविलम्ब ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है कि वित्त आयोग जैसी सांविधानिक संस्था की स्थिति योजना आयोग जैसी गैर सांविधानिक संस्था से प्रभावित न हो। इस विषय में स्पष्ट प्रावधान हमारी संघात्मक व्यवस्था के स्वतन्त्र संचालन में सहायक हो सकेंगे।

सन्दर्भ

1. दुर्गादास बसु, **इन्ट्रोडक्शन टू द कॉस्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया**, नई दिल्ली, प्रेंटिस हाल, 1985, पृ. 287.
2. **उपर्युक्त**
3. **उपर्युक्त**
4. भारत का संविधान, अनुच्छेद 254 (2).
5. भारत का संविधान, अनुसूची द्वितीय की संख्या 48.
6. भारत का संविधान, सूची प्रथम, संख्या 87.
7. भारत का संविधान, सूची प्रथम, संख्या 97.
8. उच्चतम न्यायालय का निर्णय ए. आई. आर. 1971, एस. सी. 870, उद्धृत डी. सी. बसु, पूर्वोक्त, पृ. 292.
9. भारत का संविधान, अनुच्छेद 280 (1).

10. भारत का संविधान, अनुच्छेद 280 (2).
11. भारत का संविधान, अनुच्छेद 280 (3) क, ख, ग.
12. बी. पी. त्यागी, पब्लिक फायनेंस, मेरठ, जयप्रकाश नाथ पब्लिकेशन्स, 1986, पृ. 648.
13. **भारत का संविधान,** अनुच्छेद 280 (4).
14. **भारत का संविधान,** अनुच्छेद 281.
15. द्रष्टव्य भारत का संविधान, अनुच्छेद 275 (1).
16. द्रष्टव्य बी. पी. त्यागी, **पब्लिक फाइनेंस,** जयप्रकाश नाथ पब्लिकेशन्स, मेरठ, 1986, पृ. 703.
17. **उपर्युक्त,** पृ. 718-19.
18. **उपर्युक्त,** पृ. 719-20.
19. **उपर्युक्त,** पृ. 720.